Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 GISRRJ | Volume 6 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

श्रीमद्भागवत महापुराण में नवधा भक्ति का स्वरूप

डॉ0 देवनारायण पाठक
सह आचार्य, संस्कृत विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित्) विश्वविद्यालय, कोटवा जमुनीपुर, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।
महिमा सिंह
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित्) विश्वविद्यालय, कोटवा जमुनीपुर, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 6, Issue 6
Page Number : 66-69
Publication Issue :
November-December-2023
Article History
Accepted : 10 Dec 2023
Published : 30 Dec 2023

शोधसारांश– श्रीमद्भागवत महापुराण संस्कृत वाङ्मय का आकर ग्रन्थ है, इसका अध्यात्म, काव्य और सामाजिक संगठन सम्पूर्ण विश्व के लिए गौरव का विषय है। जीवों के कल्याणार्थ ही इस महनीय ग्रन्थ का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति के स्वरूप पर विचार किया जायेगा।

मुख्य शब्द–महापुराण, नवधा भक्ति, सस्कृत, वाङ्मय, परमपुरुषार्थ, कल्याणार्थ।

प्रस्तावना– श्रीमद्भागवत वैष्णव सम्प्रदाय की परम सम्पत्ति है। इसके प्रत्येक अध्याय और संवाद में ऐसे उपदेश और विचार प्राप्त होते हैं जिनके अनुसार आचरण करने से जीव अपना परम कल्याण प्राप्त कर सकता है। विषयों की आसक्ति को त्यागकर अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन और अनुष्ठान करते हुए परमात्मा की भक्ति में एकीकृत होकर उनका स्मरण करते हुए तदाकारित होकर परमार्थ को प्राप्त करना ही श्रीमद्भागवत महापुराण का परमपुरुषार्थ है। श्रीमद्भागवत महापुराण की एक प्रमुख विशिष्टता यह भी है कि वह श्रुतिमूलक होने पर भी स्वयं की मौलिक विशेषता लिये हुए है, वैदिक परम्परा को भी भागवतपुराण ने इस प्रकार ग्रहण किया है कि उसकी विशिष्टता यथावत् अक्षुण्ण बनी रहीं। आज तक ब्रह्माण्ड में जितने महापुरुष हुए हैं उनके द्वारा ज्योतिषचक्र, भूगोल आदि का वर्णन कर अनेक राजा–प्रजाओं का वर्णन करके यही बात चित्त में बैठाने की चेष्टा की गयी है कि जीव–जीवन की पूर्णता केवल परमात्मा को प्राप्त करने में ही है। श्रीमद्भागवत में परमहंसों के सर्वोच्च ज्ञान का प्रकाश है। इसमें वर्णित है कि इसके सुनने की इच्छा मात्र से तत्क्षण हृदय में परमात्मा का वास हो जाता है। श्रीमद्भागवत की एक प्रमुख विशेषता है कि ''यस्मिन् ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यमाविकृतम्'' अर्थात् जिसमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से युक्त नैष्कर्म्म का आविष्कार किया गया है तथा अन्य ग्रन्थों में जिस नैष्कर्म्य का वर्णन है वह ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति से रहित है, परन्तु इसका नैष्कर्म्य उनके सहित है। ''नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते'' भगवद्भक्ति रहित ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति नैष्कर्म्य भी शोभायमान नहीं होती। भक्ति अर्थात् ज्ञान की शोभा इसी में है कि वह भक्तिमय हो, जो भक्तिरहित ज्ञान को सम्पादित करते हैं वे निन्दा के पात्र होते हैं।

श्रीमद्भागवत में भक्ति का केवल साधन रूप में ही वर्णन किया है, ऐसी बात नहीं है, कई जगहों पर तो ज्ञान और मुक्ति से भी बढ़कर भक्ति को बताया गया है। पंचम स्कंध में आया है–

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

'भुक्तिं ददाति किंचित न तु भक्तियोगम्।' अर्थात् भगवान मुक्ति तो देते हैं परंतु भक्ति नहीं देते। तात्पर्य यह है कि भक्ति, मुक्ति से भी बड़ी है। भगवान के सेवाप्रिय भक्तों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि साष्टि, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य भक्ति भगवान के देने पर भी भक्त नहीं लेते, वे केवल भगवान की सेवा ही करना चाहते हैं। तीसरे स्कंध में भगवान कपिल" ने अपनी माता देवहुति से कहा है कि, "ऊंची श्रेणी के संत मुझसे एक होना नहीं चाहते, वे मेरी सेवा करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तों को मैं दर्शन देता हूं। उनसे बातें करता हूं और उनका सेवक बन जाता हूँ। इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि भक्ति स्वयं साध्य और फलरूप भी है।

भक्ति का स्वरूप . श्रीमद्भागवत में स्थान–स्थान पर भक्ति और ज्ञान के साधनों का वर्णन हुआ है। भगवान के स्वरूप, गुण, लीला, नाम आदि का श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण, उनके श्रीविग्रह को अपने सामने साक्षात् अनुभव करते हुए उनके सख्य, दास्य आदि संबंध का स्थापन और संपूर्ण भाव से उनके प्रति आत्मसमर्पण यह नवधा भक्ति है। श्रीमद्भागवत में इस नवधा भक्ति के लक्षण और उदाहरण बहुत से स्थानों में पाये जाते हैं। निर्गुण भक्ति योग का लक्षण करते हुए कहा गया है कि भगवान वर्णन सुनकर चित्त की संपूर्ण वृत्तियां इस प्रकार भगवान को विषय करने लगे जैसे गंगाजी की धारा अखण्ड रूप में समुद्र में गिरती है। यह स्मरण की अविच्छिन्नता ही निर्गुण भक्ति है। ज्ञान का लक्षण करते हुए कहा गया है कि जब अपनी अनुभूति से ऐसा निश्चय हो जाए कि यह भाव और अभाव रूप समस्त कार्य– कारणात्मक जगत् अविद्या के कारण ही आत्मा में प्रतीत हो रहा है। वास्तव में इसकी कोई सत्ता नहीं है, केवल आत्मा ही आत्मा है, तब उसको ब्रह्मदर्शन समझना चाहिए। और भी कहा है कि जो वस्तु अन्वय और व्यतिरेक की दृष्टि से सर्वदा अबाध है, उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आत्मा के अज्ञान का इतना ही रूप है कि केवल आत्मतत्व में विकल्प की सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है। इस ज्ञान की उपलब्धि अमानित्व आदि साधन और तत्वविचार के द्वारा होती है। जब ज्ञान और भक्ति दोनों पर ही विचार करते हैं तब ऐसा जान पड़ता है कि दोनों ही दृष्टियां जगत् की आसक्ति और चिंतन को छोड़कर केवल परमात्मा में लीन हो जाने के पक्ष में हैं।

परमात्मा का स्वरूप सगुण है कि निर्गुण, निराकार है कि साकार ? यह भेद परमात्मा के पास पहुंचने पर खुल जाता है। जो लोग विषयों की आसक्ति और चिंतन न छोड़कर परमात्मा के चिंतन और स्मरण की चेष्टा नहीं करते और परमात्मा के स्वरूप को सगुण अथवा निर्गुण सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं, वे केवल कल्पना लोक में बुद्धि की सीमा के भीतर ही चक्कर काट रहे हैं। परमात्मा का स्मरण करते रहने से स्वयं उसके स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है, चाहे वह स्वरूप सगुण हो या निर्गुण । सुख–दुःख के हेतु कोई मनुष्य देवता अथवा ग्रह आदि नहीं है। केवल मन ही कारण है। वही संसार चक्र की धुरी है। उसी के आधार पर अच्छी–बुरी सृष्टि होती है। आत्मा तो असंग है। उसका कोई स्पर्श नहीं कर सकता। मन सचेष्ट होता है उसे अपना स्वरूप मान लेने पर आत्मा बद्ध–सा हो जाता है। जिसका मन शांत नहीं है, उसकी क्रिया का कोई उपयोग नहीं है, जिसका मन शांत है उस पर क्रिया का कोई प्रभाव नहीं । सब इंद्रियां मन के वश में हैं। मन को जीत लिया जाए तो सबको जीत लिया। उसको न जीतकर जगत के शत्रुओं को जीतना मूर्खता है।

शत्रुओं का स्रष्टा मन है। मन ने ही शरीर को अपना माना, शरीर के रूप में मन ही है वही भटक रहा है। भौतिक पदार्थ, भौतिक शरीर को दुःख पहुंचा सकते हैं। अपनी ही दांत से जीभ कट जाए तो क्रोध किस पर करें ? यदि देवता ही दुःख देते हों तो दे लें, वे केवल अपने विकार को ही प्रभावित कर सकते हैं। आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। फिर कौन किसी को कैसे दुःख दे संपूर्ण आत्मा ही है। इसलिए श्रीमद्भागवत में भक्ति को विशिष्ट महत्व दिया गया है।

भक्त का हृदय भगवान के दर्शन के लिए उसी प्रकार छटपटाता है, जिस प्रकार पक्षियों के पंखरहित बच्चे माता के लिए, भूख से व्याकुल बछड़े दूध के लिए तथा प्रिय के विरह में व्याकुल सुंदरी अपने प्रियतम के लिए छटपटाती है।

भागवत के अनुसार भक्ति ही मुक्ति की प्राप्ति में प्रधान साधन है। ज्ञान–कर्म भी भक्ति के उदय होने से ही सार्थक होते हैं। कर्म का उपयोग वैराग्य उत्पन्न करने में है। जब तक वैराग्य की उत्पत्ति न हो जाय, तब तक वर्णाश्रम विहित आचारों का निष्पादन नितांत आवश्यक है। कर्मफलों को भी भगवान को समर्पण कर देना ही उनके 'विषदंत' को तोड़ना है। श्रेय की मूलस्रोत भक्ति को छोड़कर केवल बोध की प्राप्ति के लिए उद्योगशील मानवों का प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल है जिस प्रकार भूसा कूटने वाले का यत्न ।

अतः भक्ति दो प्रकार की मानी जाती है साध्यरूपा और साधनरूपा । साधन भक्ति नौ प्रकार की होती है–विष्णु का श्रवण–कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन। भागवत में सत्संगति की महिमा
का वर्णन बड़े सुंदर शब्दों में किया गया है।

साध्यरूपा या फलरूपा भक्ति प्रेममयी होती है। जिसके सामने अनन्य भगवत्पादाश्रित भक्त ब्रह्म के पद, इंद्र पद, चक्रवर्तीपद, लोकाधिपत्य तथा योग की विविध विलक्षण सिद्धियों को कौन कहे मोक्ष को भी नहीं चाहता। भगवान के साथ–नित्य वृंदावन में ललित विहार की कामना करने वाले भागवच्चरण चंचरीक भक्त नीरस मुक्ति को प्रयास मात्र मानकर तिरस्कार करते हैं।

इस प्रकार भक्ति शास्त्र के सर्वस्व भागवत में भक्ति का रसमय स्रोत भक्तजनों के हृदय को आप्लावित करता हुआ प्रवाहित हो रहा है। भागवत के श्लोकों में एक विचित्र अलौकिक माधुर्य है। अतः भाव तथा भाषा की दृष्टि से श्रीमद्भागवत का स्थान हिंदुओं के धार्मिक साहित्य में अनुपम है। सर्ववेदांतसार भागवत का कथन यथार्थ हैः

श्रीमदभागवतं पुराणमभक्तं यद् वैष्णवनां
प्रियं यस्मिन् पारमहंस्यमेकमभक्तं ज्ञानं परं गीयते।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्
तच्छृण्वन् विपठन विचारणपरो भक्त्या विमुच्येनः।।

निष्कर्ष– भगवान् को प्राप्त करने के लिए कर्म, योग, ज्ञान सभी मार्ग उत्तम है, परन्तु भक्ति की शास्त्रों में अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। नवधा भक्ति में से जिनमें कोई भी भक्ति होती है। वह संसार सागर से अनायास तरकर भगवान् को पा जाता है, फिर प्रहलाद की भाँति जिनमें नवों भक्तियों का विकास है उनका तो कहना ही क्या है, वस्तुतः वे सभी लोग धन्य हैं, जिसमें भगवान् के भक्त उत्पन्न होते हैं। श्रीमद्भागवत् संस्कृत वाङ्मय का अनुपम रत्न है, यह निगम कल्पतरू का अमृतमय फल है। श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति की महिमा में कहा गया है कि–

"जो लोग बारम्बार तुम्हारे चरित्रों का श्रवण, गायन, वर्णन एवं स्मरण करते हैं और आनन्दमग्न होते रहते हैं वे ही शीघ्रातिशीघ्र संसार के प्रवाह को शान्त कर देने वाले आपके चरण कमलों का दर्शन पाते हैं।

सन्दर्भ–

1. श्रीमद्भागवत् महापुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भागवत्, डा0 विनोद, पार्श्वप्रकाशन, प्रथम आवृत्ति, 1986
3. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, बारहवां, पुनर्मुद्रण संस्करण, 2006
4. गीता रहस्य, बालगंगाधर तिलक, राधा पब्लिकेशन, नूतन संस्करण, 2007
5. भारतीय संस्कृति तत्वमंथन, आचार्य, जावड़ेकर, गुजरात विद्यापीठ प्रथम आवृत्ति, 1986